धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 45 रुपये
अंक 135
आश्विन,
2080 वि. सं.

पितृ-भक्ति विशेषांक

Facsimile copy of the particular article

पितरों का श्राद्ध और तर्पण क्यों है आवश्यक?

पूर्वजों की पूजा और प्रतिष्ठा चिह्न

डा. श्रीकृष्ण "जुगनू"

लगभग 200 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्रीकॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान, मेल : skjugnu@gmail.com

मनुस्मृति स्पष्ट शब्दों में श्रुति, स्मृति, सदाचार और सदाचार के अविरुद्ध आत्मप्रिय- इन चारों को धर्म का लक्षण बतलाया है। यहाँ सदाचार लोकाचार है, जिसे लोक निर्धारित करती है। अविच्छिन्न रूप से चलती आ रही लोक-परम्पराएँ हमारे कर्तव्यों को निर्धारित करती हैं। इससे पूर्व आलेख में हम भारतीय जनजातियों की पितर सम्बन्धी अवधारणा की लोक-परम्पराओं का अवलोकन कर चुके हैं। यहाँ राजस्थान के क्षेत्र की सार्वजनीन लोक-परम्परा का प्रलेखन किया गया है। यहाँ न केवल भील जनजाति में अपितु सबमें 'पाहन' गाड़ने की परम्परा है। पितृपक्ष में सांझा भित्ति-चित्र बनाकर पूर्वजों की स्मृति में आरती उतारी जाती है। वीरता के साथ मृत पूर्वज की स्मृति में पाहन गाड़ते हैं। इनके अतिरिक्त खेतला, पालिया, तालिया, मालिया, मसानिया आदि पूर्वजों के स्मृति-चिह्न हैं, जिनका प्रलेखन यहाँ चित्रों के साथ किया गया है। लेखक उसी क्षेत्र के जाने माने विद्वान् हैं इन्होंने इन पाहनों पर लगे अनेक शिलालेखों का वाचन भी किया है। अतः यह आलेख प्राथमिक स्रोत है, जो लेखक का प्रत्यक्ष भोगा हुआ यथार्थ है।

परिवार के दिवंगत पितर (पूर्वजों) होकर पाषाणमय हो जाते हैं। विशेषकर वे जिनकी प्राकृतिक तरीके से मृत्यु न हुई हो, उनकी स्मृति को पाषाण की लेखा या रेखा ही बचा सकती है। और, यह मान्यता मानव समुदाय के साथ उस काल से जुड़ी है जबकि वह यादों को सहेजने का ज्ञान समझने लगा था। इसी दौर में वह स्वाद के लिए पेड़, कृषि और उसके उत्पादों को चिन्हित करने लगा था। पितरों को महत्व देना पारिवारिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाना और उनको चिरायु रखने का भाव है, यह पूरी दुनिया में है और यही बाद में जनजातीय विशेषता भी समझी गई। और, उन्हीं से अन्य समुदायों ने भी स्वीकार किया। *(-कला की काल कथा : श्रीकृष्ण "जुगनू", पश्चिम भारत की यात्रा : कर्नल जेम्स टॉड)*

यों तो पाहन या पत्थर से बने होने से ये चिह्न पाहनिया या पाल्या या पालिया कहे जाते हैं। जहाँ पर स्थापित होते हैं, उनके आधार पर भी इनके नाम होते हैं। प्रायः खेत और खेत की पाली, तालाब, महल, मार्ग स्थान और श्मशान पर स्थापित होते है। इसी कारण इनके नाम भी होते हैं। यथा :

1. **खेत पर लगे पितृ, देवचिह्न : खेतला**
2. **पाल या पाली पर लगे : पालिया**
3. **ताल पर लगे हुए : तालिया**
4. **महलों पर लगे : मालिया**
5. **श्मशान पर लगे हुए : मसानिया।**

पूर्वजों की स्मृति में बने पाहन

ये है न स्मृतियों की स्मृतियाँ। पूजा के अनेक तौर तरीके हैं, जैसा घर और समुदाय, वैसा ही उसका पितर, पूर्वज। कार्तिक पूनम और उससे पहले चतुर्दशी को पितरों के नाम जागरण होते हैं। पालियों को स्नान करवाया जाता है, घी का लेपन किया जाता है। इससे पाषाण घिया होता है और घिया होकर दिया !

पराक्रम प्रदर्शक पाषाण प्रतिमाएँ :

संसार भर में स्मृतियों को स्थायी रूप से सहेजने के लिए पाषाण का प्रयोग बहुत पुराने काल से होता आया है। जनजातियों से लेकर अभिजनों तक की स्मृतियों को शिलाओं ने स्मारक रूप दिया है। वीरों के दान वचन, पूजन, आखेट, मोर्चा लेने, प्रयाण से लेकर प्राणोत्सर्ग तक के प्रसंगों को शिलाओं ने अपने अंक में अमिट किया है। ये सब कार्य मूलत: पराक्रम के ही पर्याय होते हैं। विश्व भर में ऐसे शौर्य स्मारक मिलते हैं। कहीं पालिए, कहीं पुतली तो कहीं वीरगल कहे जाते हैं।

दक्षिण में वीरगल बहुत कलात्मक बने। बहुत बने और अनेक रूप वाले बने। हमारे इधर और उधर की मध्य कालीन प्रशस्तियों में वीर के प्राणांत होने पर लिखा जाता है कि शूरवीर सूर्य मंडल को भेदता हुआ स्वर्ग को चला गया। शुक्रनीति, राज प्रशस्ति, अमर काव्य, जय प्रशस्ति आदि में ऐसी पंक्तियाँ अनेक बार आती हैं :

छत्र चामर संयुक्तं राज्यचिह्नैरलंकृतम्।
भेदित्वा सूर्यमण्डलं जगामस्त्रिदशालयम्।

और,

श्रीचित्रकूटे प्रबभूव युद्धं
यस्मन्दिने भूरि जगतप्रसिद्धम्।
तस्मिन्दिने वीरवरान्विभिद्य
बिम्बं रवेर्भाति दिवं प्रपद्य॥

(अमरकाव्य 15, 89)

दिवंगत होना यानी स्वर्ग प्रयाण करना। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में कर्नाटक के ऐसे सैनिकों के प्रति सम्मान दिया गया है। (चित्रसूत्र : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी)

वीरगल या नायक पाषाण के लक्षण :

शौर्यशिला अथवा वीरगल के निर्माण में प्राय:

पितर की स्मृति में अभिलेखयुक्त वीरगल

निम्न बातों का ध्यान रखा जाता था :

1. उस वीर ने कहाँ और कैसी वीरता दिखाई? किस रूप में लड़ा? किस शास्त्र से लड़ा? किसको साथ लेकर लड़ा? अश्व सवार था या गज सवार? यदि राजा था तो राज चिह्न, पताका जरूर होगी।
2. दिवंगत होते ही उसका स्वागत चामर धारिणी दिव्य अप्सराएं, देवांगनाएं, अमर योषिताएँ करती हैं। वे अनुरंजन करती हैं और अमोद प्रमोद का परिवेश रचती हैं।
3. दिवंगत योद्धा शिव का सदैव सान्निध्य प्राप्त करता है, पूजा का लाभ लेता है, गण का पद या स्थान प्राप्त करता है और अक्षय काल तक वहाँ विद्यमान रहता है।
4. सूर्य और चंद्रमा के विद्यमान रहने तक यह स्थिति

शिवलिंग सहित वीरगल

बनी रहती है।

5. वीरगल पर कभी कभी स्वस्ति वचन, संवत् के साथ वीर के पराक्रम और स्वर्गोपम कार्यों का साक्ष्य भी अंकित किया जाता है।

(संदर्भ : एकलिंगपुराण और कला की काल कथा : श्रीकृष्ण "जुगनू")

इसके अलावा भी वीरगल के रूप होते हैं। मेरे देखने में लगभग चार सौ प्रकार आए हैं जो देश, काल और परिस्थितियों की देन भी होते हैं। इनका मूल प्रयोजन शूरवीरता, सेवा, सत्कार्य, रक्षा, सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों के प्रति सामाजिक सम्मान की स्थापना और उसकी अपेक्षा है। इनका एक रूप बिल्कुल व्यक्तिगत भी होता है और केवल कुल या वंशवाले पूजा करते हैं लेकिन शासक के स्मारक सामाजिक सम्मान के सूचक होते हैं।

गले में झूलते हैं पूर्वज और लोकदेवता :

लोकांचल में अपने पूर्वज की पूजा कदाचित सबसे पहले चली क्योंकि उनके प्रतीक पाहन से बने मिलते हैं और कहीं कहीं लकड़ी के भी। पाहन वाले पाहनिया और पालिया कहे जाते हैं और काष्ठ वाले लाकड़िया! यह उस दौर की बात होगी जबकि धातु का प्रयोग शुरू नहीं हुआ होगा। धातु के चलन के बाद ये

पितृपक्ष में सजे-धजे पाहन, पितरों को गौरव की दृष्टि से निहारती संततियाँ

प्रतीक तांबा या चांदी और सामर्थ्य होने पर सोने के भी बनाए गए। जो इनको धारण करता है सम्मान और श्रद्धा का पात्र होता है। पुरुष क्या, स्त्रियाँ भी धारण करती हैं। मौके के अनुसार ही इनकी महत्ता है। अनेक परिवार इनसे ही अपनी समृद्धि बताते थे किसी के सामने! कहावत यह भी रही : देवरे में दिखावे पण खाली हाथ मुंडे नी जावे। कई नी तो मांदलियो गिरवी मेले ने काज करावे! यानी कि यह जमा पूंजी भी है।

यह सम्मान का सूचक है। यह औरतों और पुरुषों के गले का ऐसा गहना है जिसका आत्मिक संबंध सात्विक भाव और देव उपासना से रहा है। भोपा और भोपिन, कोटवाल और हजूरिया जैसे जो भी लोग देवरे के बावजी की सेवा चाकरी, भाव भभूति और पंखा पवन से जुड़े होते हैं, यह मादलिया धारण करते हैं। भारतीय सभ्यताओं के उत्खनन में ऐसे ताबीज मिले हैं यानी यह प्रथा स्थानीय है। यह आभूषण से कम नहीं, कला और कारीगरी दोनों ही दृष्टि से। इसके पर्याय हैं :

- **फूल, फूला और फूलडिया**
- **मादलिया और मामादलिया,**
- **नांवा, देवनामा और दर्शन**
- **पूतली या फूतली और रूपागल।**

- **चौकी या चौकियाँ**

अमूमन चांदी के बनते हैं। ये मुद्रिका जैसे होने से मुद्रा, सिक्का, मुहर जैसे आकार वाले और रचना में चौकोर, पंचकोण, छः कोण होते हैं या फिर वृत्ताकार, तांबूल पत्र जैसे भी बनाए जाते हैं। जैसा देवरूप, वैसा ही उस पर उभार वाला अंकन! श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार सवा दो, सवा पांच, सवा सात, सवा नौ और सवा ग्यारह तोला चांदी का प्रयोग होता है। हर अंग के अपने नाम : पड़ा, पड़द, कोर, कोट, कांगरा, पीपली, वेच, कड़ी, आंकड़ी... आदि। डा. . महेंद्र भानावत के अनुसार भील, मीणा ही नहीं, राजस्थान की लगभग हर सामाजिक सेवा धर्म से जुड़ी जातियां, बैठकी, कृषि धर्म को धारण करने वाले समुदाय ऐसे मादलिया धारण करते हैं। यह आत्मिक खुशी और पारस्परिक सम्मान का प्रतीक भी है। गुर्जर, रायका, रेबारी आदि में इसे लेकर बड़ी आस्था है। जब इसको धारण किया जाता है तो विवाह की तरह का "नांवा संस्कार" आयोजित होता है। बंधु बांधवों के यहाँ बिनोला खाना और फिर जात जीमन होता है। इसको धारण करने की अपनी मर्यादाएँ हैं, सीमाएँ हैं, नियम हैं! (उदयपुर के आदिवासी)

सांझी अंकन : श्राद्ध पक्ष में भित्ति मंडन

दीपावली में पितरों के चिह्न की आरती उतारती महिलाएँ।

यह प्रतीक प्रत्येक लोक देवी देवता का हो सकता है। बहुत ही कलात्मक और सृजनात्मक। जैसे : काला और गोरा भैरूजी, धर्मराज यानी देवनारायण, राडा रूपन, मामादेव, खाखलदेव, ताखाजी यानी तक्षक नामक नागदेव, गोगाजी, भूनाजी, भोजाजी आदि। घर के पूरबज यानी पूर्वज बावजी की पुतली छोटी होती है। ये धागे में पिरोकर बांधी जाती है लेकिन यह धागा कपास का नहीं होता। भेड़ की ऊन को कातकर बनाया जाता है। परिवार में बालक होने पर नांवा में बधापा करवाया जाता है। तब भोज होता है। स्त्री पूर्वज होने पर मातलोक कहे जाते हैं। बालक और बालिका पूर्वज होने पर करंडक (बेंत की टोकरी) में विराजित किए जाते हैं।

मेवाड़ के गाँव में ऐसा कोई कृषिजीवी घर नहीं होगा जहाँ नांवा नहीं मिले। बड़े जतन से रखा जाता है। पूजा भी जाता है। ऐसा कोई आस्तिक व्यक्ति नहीं होगा जिसमें नांवा धारण करने वाले को नमन नहीं किया हो। सोनी परिवार सांचा, ठप्पा की उसी विधि से बनाते हैं जैसे टकसाल में सिक्के बनाए जाते थे। उदयपुर के भारतीय लोक कला मंडल में ऐसे अनेक मादलियों का अच्छा संग्रह है। कुछ पारंपरिक और कुछ नवीन विषय वाले।

मानव ने अपनी पहचान के अनेक प्रयास किए हैं। शरीर पर जन्मजात चिह्न लासन और लांछन कहे जाते हैं। सामुद्रिक शास्त्र क्या कहता है? उष्णिष, पेच, पगड़ी, साफा, हार, चौसर, हंसली सहित गुदना से अपनी पहचान दिखाई तो मुद्रिका, चूड़ामणि क्या थे! शकुंतला, रामकथा में भी ऐसे चिह्नों पर चर्चा है... क्या कहीं नांवा भी नामलेवा है? जबकि इसका बहुत प्रचलन है। स्मृतिपटल मिस्र से लेकर भारत में अनेक रूपों, आकारों में मिलते हैं। इनको वीरगळ भी कहा जाता है। गुजरात और राजस्थान के पाळिये आकार-प्रकार में भिन्न नहीं मिलते। दिवंगत होने वाले स्त्री-पुरुष अश्वादि वाहनों पर अथवा गाड़ी पर आरूढ़, मिलते हैं तो कहीं-कहीं केवल हाथ के चिह्न भी दिखाई देते हैं। ये रूप भिन्न क्यों हैं, हथेलियों और भुजा सहित त्रिकोण बनाते हाथों की छाप होने के पीछे क्या मान्यताएँ रही हैं, आयुध के रूप में कमंडल, मालाओं से क्या अभिप्राय है, रथारूढ़ या छकड़े पर विराजमान होने की वजह

क्या है— कई दृष्टि से इस संबंध में विचार किया जा सकता है।

श्राद्ध पर्व भी है दीपोत्सव

आश्विन नहीं, कार्तिकी अमावस पर भी पितरों को सामूहिक जलांजलि की परम्परा है। आंधीझाड़ा, दाभ, पलाश को गूंथकर बनाई जाती है बेल और फिर खेत में जल की धारा बहाई जाती है, कही जाती है दर्भ और गाय से उद्धव की कथा, श्राद्ध की एकदम अलग धारणा! परंपराओं का देश भारत!

दीपावली पर जहाँ सभी लक्ष्मी पूजन करते हैं, वहीं दाभ गुर्जर समाज द्वारा पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। इसके लिए लोग अपने घर से पूजा की सामग्री लाते हैं। समाज के राव यजमान के साथ एक विशेष लोकगीत गाते हुए नदी या तालाब के पास पहुंचते हैं।

वहाँ सभी लोग मिलकर पूजन व धूप पूर्वजों के निमित्त करते हैं। बाद में आंधी झाड़ा और मुंडापाती की लता या बेल बनाते हैं। इसे बेलड़ी लगाना भी कहते हैं। सभी लोग पानी की धारा के पास कतार में लगते हैं और हाथों में पूड़ी व खीर ले लेते हैं। अन्त में तीन बार पानी में हाथ की खीर पुड़ी को हिलाने के बाद एक साथ छोड़ देते हैं।

इस समाज का यही श्राद्ध विधान है। यह कनागत से अलग है और इस समुदाय की अलग ही मान्यता को बताता है लेकिन यह मान्यता समान है कि ऐसा करने से पूर्वज सुख और समृद्धि का आशीर्वाद देते हैं। इसके बाद सभी लोग पड़वा को गाय का पूजन करते हैं। गाय को छेड़ा खिलाया जाता है।

कला का कनागत : आलेख्य का आसोज (पितर पक्ष/ चित्र पक्ष)

आश्विन के महीने में भित्तिचित्र बनाने की परिपाटी बहुत पुरानी है। उस काल की जबकि मानव ने बारिश में धूली हुई पहाड़ी पत्थर वाली भित्तियों को उघाडी देखा और चींटी, कर्मला - कामला, गजाई, घेंगा आदि रेंगने वाले जंतुओं से बचाव के लिए गाय के गोबर का प्रयोग करना सीखा। बाद में, गोबर के उभरांकन सुगम रूप से करने के लिए आधार पर हिरमिच से रेखांकन किया। शैलाश्रय में भी ऐसे अंकन मिल जाते हैं। हिरमिच और खड़िया के नाम हड़मची और खड़मची क्या ऐसे ही हो गए!

गृहिणियाँ और महिलाएं, खासकर लड़कियाँ इस काम में आगे आईं। गुहाओं में गोबर से सज्जा का यह काम काम संजा या संझ्या भी कहा जाने लगा। संझ्या को सांझ से जुड़ा कन्या पर्व कहा जाता है, यह क्वार के कनागत का पक्ष पर्व भी है। सांझी, संझ्या, संध्या, क्वार चितराम, मामुलिया, भितां, रनु, रली, झांजी ... कई नाम मगर एक ही पर्व।

यह विश्वास भी पनप गया कि यह श्राद्धपक्ष में लोकदेवी संझ्या के स्मरण का सुअवसर है। लेकिन, इसमें पूर्ववर्ती पीढ़ियों के पात्रों, जो कि पूर्वज — पितर हैं, को उपकरणों, गतिविधियों समेत चित्रित करने का काम तो किया ही जाता है। गुहा चित्रों की पृष्ठभूमि इस प्रसंग में तुलनीय है। पानी पर रंग, आंगन में पत्तों से अंकन बहुत बाद में आया। उत्तर मध्यकाल में तो सांझी पर पदों की रचना भी होने लगी।

हमें पता है कि कन्याएँ तिथि के अनुसार गाय के गोबर से नित नई आकृतियाँ बनाकर पत्तों, फूल— केसर, पंखुडियों से उसे सजाती हैं और फिर आरती करती हैं। 'आरती' यानी अपनी ही बनाई गई कला को कोई बुरी नजर न लग जाए, इसलिए निराकरण का उपाय। आरात्रिक या आरार्तिक... आरती का मूल विचार इस पर्व के साथ जुड़ा है। गो गोबर, गोलमण्डल, गुलपोशी, गोधूली वेला, गीतों से गुणगान... और पूरे पन्द्रह दिन बाद विसर्जन...। गुहा से गमन।

वेद में उषादेवी और रात्रि देवी के आवाहन का संदर्भ है मगर संध्यादेवी के पूजन का यह अनूठा पर्व है, जो प्रत्येक तिथि के साथ जुड़ी है और तिथि के वृद्धिसूचक अंकों के अनुसार अपना आकार तय करती जाती है... नारदपुराण में इन्हीं गुणों के कारण संध्यावली को श्रेष्ठ नायिका कहा गया है जो पति, पुत्र सहित महालय में लीन होती है लेकिन इसका खास सन्दर्भ सांब पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण धारण किए हुए हैं लेकिन यह बड़ा सच है कि लोक से ही पुराणकारों ने ज्यादातर उधार लिया है। लोक का श्लोक किया है। हमें लोक के संदर्भ लोक में ही खोजने चाहिए। देखिए :

आला फूलां भरियो वाटको जी कांई,
संझ्या की बाई ओ,
संझ्या ने भेजो करां संझ्या री आरती...।

अनेक गीत इसको गरिमा दिए हैं।

कानवन गाँव के श्री नंदकिशोर प्रजापति और उनके साथियों ने संजा गीत संग्रह तैयार कर बंटवाया है। उज्जैन की डा. . ज्योति बाला बैस और बेटी ने इस चित्र पर्व के चित्रों को जुटाया है और कहा है कि जितने दिन होते हैं, उससे ज्यादा त्योहार हम मना लेते है। उत्सव प्रिय जो ठहरे। जब उत्सवों को धर्म से सम्बद्ध किया तो ये आस्था में रच बस गए और पूज्य हो गए।

संजा लोकदेवी है और भादौ की पूर्णिमा को अपने मायके पधारती हैं। सखियों के संग खूब चुहलबाजी करती हैं। बालिकाओं द्वारा दीवार पर गोबर से अनेक मंगल आकृतियाँ निर्मित की जाती हैं और सांझ ढले अर्चना होती है। दीप प्रज्वलित कर आरती की जाती है और कोमल कंठों से निकली स्वर लहरी सांझ वेला को रसमयी बना देती है। एक सांझी गीत

काजल टीकी लो भई काजल टीकी लो,
काजळ टीकी लई ने म्हारी संजा बई के दो,
संजा बई को सासरो सांगानेर,
परण पधारिया गढ़ अजमेर...।

खूब सारे छोटे छोटे गीत जो लगभग बाल कविता जैसे हैं, गाये जाते है, सबसे प्रमुख अंग है प्रसाद वितरण, जो खट्टा, मीठा, तीखा कैसा भी हो, आसानी से वितरित नहीं होता है। परीक्षा है ये नाक के घ्राण शक्ति की, कानों की आवाज से पहचानने की, आँखों की छिपाकर रखी चीज को जानने की कि आखिर है क्या? बताने में असफल रहने पर भी प्रसाद तो मिलता ही है। भुट्टे के दाने, अमरूद, सेवफल, से लेकर चना चिरौंजी तक और फिर अगली लड़की के घर जाकर यही क्रम दोहराया जाता है, जब तक सबके घर पूजन न हो जाय।

हमने भी मनाया इस पर्व को खूब उल्लास के संग। एक गुट होता था सहेलियों का जो पहले गोबर फिर फूल पत्तियों की जुगाड़ करता। भाई भी मदद करते। पान की दुकान से सिगरेट की पन्नी कबाड़ लाते संजा की सज्जा के लिए। कोई कचहरी के बाहर रद्दी कार्बन और बटरपेपर बीन लाता। घर के हल्दी, कुमकुम, चावल और हो जाती संजा तैयार। डा. . ज्योति बाला लिखती हैं कि बालिकाओं द्वारा गोबर से दीवाल पर प्रतिदिन भिन्न भिन्न मंगल आकृतियों का निर्माण कर इस उत्सव को मनाया जाता है। सांझी को रिझाया जाता है। मीठी मालवी बोली का प्यारा सा गीत :

संजा तो मांगे हरो हरो गोबर / कहाँ से लाउ भई हरो हरो गोबर/ किसान घरे जऊं/ हाँ से लाउं/ ले भई संजा हरो हरो गोबर,/ संजा तो मांगे/ लाल पीला फुलड़ा/ कहाँ से लाऊं भई / हरा पीला फुलड़ा/ माली घरे जऊ/ हाँ से लऊं/ ले भई संजा हरा पीला फुलड़ा।/ संजा तो मांगे/ दूध पतासा/ कहाँ से लउं भई/ दूध पतासा/ हलवाई घरे जाऊं/ वहाँ से लाऊं/ ले भई संजा दूध पतासा।/